महाराजाधिराज सर कामेशवर सिंह

बनाम

बिहार राज्य

(एस.आर. दास, मुख्य न्यायाधीश, एन.एच. भगवती और एम. हिदायतुल्ला, न्यायमूर्तिगण)

कृषि आय-कर—कृषि आय-कर पदाधिकारी की शक्ति—क्या वह अपने ही कर-मुक्ति संबंधी आदेश का पुनरीक्षण कर सकता है—बिहार कृषि आय-कर अधिनियम, 1938 (बिहार अधिनियम VII, 1938) की धारा 26।

उसके द्वारा दाखिल की गई कृषि आय की विवरणी में निर्धारण वर्ष 1944-45 के लिए, अपीलकर्ता ने रु. 2,82,192 की एक राशि दर्शाई, जिसे उसने टेकरी राज को दो पट्टा-धारित संपत्तियों के लिए, जो *जरपेशगी* पट्टा पर ली गई थीं, भुगतान किया था, और इसे उसने अपने द्वारा दावा की गई कुल कटौती की राशि की मदों में से एक के रूप में पूंजी प्राप्ति बताया। कृषि आय-कर अधिकारी ने उसके दावे को स्वीकार किया और उस राशि को कृषि आय-कर के भुगतान से मुक्त कर दिया। सहायक आयुक्त, कृषि आय-कर ने इस निर्णय की पुष्टि की। एक मांग सूचना जारी की गई और निर्धारणाधीन ने दो किस्तों का भुगतान किया। इसके बाद, कृषि आय-कर अधिकारी ने निर्धारणाधीन को बिहार कृषि आय-कर अधिनियम, 1938 की धारा 26 के अंतर्गत एक सूचना दी, जिसमें यह कहा गया कि उक्त जरपेशगी पट्टा से आय निर्धारण से बच गई थी, और उसके उपस्थित होने के बाद, एक पूरक निर्धारण आदेश पारित किया और रु. 39,512-6-0 को कर के रूप में निर्धारित किया। निर्धारणाधीन ने अपील की। कृषि आय-कर आयुक्त ने उक्त निर्णय को पलट दिया। बिहार प्रांत ने राजस्व बोर्ड का रुख किया और जिन दो प्रश्नों को उसने अधिनियम की धारा 25 (1) के अंतर्गत उच्च न्यायालय को संदर्भित किया, वे थे—(1) क्या इस वाद के तथ्यों और परिस्थितियों में, कृषि आय-कर अधिकारी को अधिनियम की धारा 26 के अंतर्गत अपने ही आदेश को संशोधित करने का अधिकार-क्षेत्र था, और (2) यदि ऐसा था, तो क्या जरपेशगी

पट्टा से प्राप्त आय अधिनियम के अंतर्गत करयोग्य थी। उच्च न्यायालय ने दोनों प्रश्नों का उत्तर बिहार राज्य के पक्ष में दिया। अतः यह अपील निर्धारणाधीन द्वारा विशेष अनुमति से की गई है।

निर्णीत, कि धारा 26 के अंतर्गत बिहार कृषि आय-कर अधिनियम, 1938 के, कृषि आय-कर अधिकारी के पास शक्ति थी संशोधित करने की अपना ही आदेश और निर्धारण करने की एक मद का आय की जिसे, यद्यपि दर्शाया गया था विवरणी में, उसने पूर्व में छोड़ दिया था कर लगाने से एक गलत धारणा के कारण कि वह कर योग्य नहीं थी।

अधिनियम की धारा 26 में "किसी कारण" शब्दों के प्रयोग ने इस धारा को भारतीय आय-कर अधिनियम की धारा 34 की अपेक्षा अधिक व्यापक बना दिया, क्योंकि इसने उन शर्तों को हटा दिया जो उस बाद वाली धारा को सीमित करती थीं।

कमल सिंह बनाम आय-कर आयुक्त, बिहार और उड़ीसा, ए.आई.आर. 1959 एस.सी. 257, लागू किया गया।

मेसर्स चट्टूराम होरिलराम लिमिटेड बनाम आय-कर आयुक्त, बिहार और उड़ीसा, [1955] 2 एस.सी.आर. 290, विशिष्ट।

निर्णयज विधि पर चर्चा की गई।

चूँकि अपीलकर्ता अपने इस वाद को सिद्ध करने में असफल रहा कि विवादित आय उसके धन उधार देने के व्यवसाय की आय थी या कि पट्टादाता को किया गया भुगतान प्रीमियम के रूप में नहीं बल्कि ऋण के रूप में था, इसलिए पट्टा-धारित संपत्ति से प्राप्त आय, जो निर्विवाद रूप से कृषि प्रकृति की थी, अधिनियम के अंतर्गत कर के लिए उत्तरदायी मानी जानी चाहिए, प्राप्तकर्ता के स्वरूप की परवाह किए बिना।

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार: 1954 का दीवानी अपील सं. 254

अपील विशेष अनुमति द्वारा से निर्णय और आदेश दिनांक फरवरी 19, 1952, का पटना उच्च न्यायालय में 1949 का विविध न्यायिक मामला संख्या 244

अपीलकर्ता के लिए *बी. सेन, एस. के. मजूमदार और आई. एन. श्रॉफ।*

उत्तरदाता के लिए *एम. सी. सीतलवाड., भारत के महान्यायवादी, बी. के. सरन तथा आर. सी. प्रसाद।*

15 मई, 1959। न्यायालय का निर्णय निम्नलिखित द्वारा प्रदान किया गया

हिदायतुल्लाह, न्यायमूर्ति—यह अपील, इस न्यायालय की विशेष अनुमति से, दरभंगा के महाराजाधिराज सर कामेश्वर सिंह द्वारा (जिसे आगे निर्धारणाधीन कहा गया है) पटना उच्च न्यायालय के दिनांक फरवरी 19, 1952 के निर्णय के विरुद्ध दायर की गई है, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने बिहार कृषि आय-कर अधिनियम, 1938 की धारा 25(1) के अंतर्गत उसके समक्ष संदर्भित निम्नलिखित दो प्रश्नों का उत्तर सकारात्मक रूप में दिया:

(1) "क्या वाद की परिस्थितियों को देखते हुए, और विशेष रूप से उस तरीके को जिसमें, उचित विचार के बाद, माननीय कृषि आय-कर अधिकारी ने अपने प्रथम निर्णय दिनांक 5 जनवरी, 1946 में यह माना था कि निर्धारणाधीन *जरपेशगी* पट्टा के संबंध में प्राप्ति पर निर्धारण के लिए उत्तरदायी नहीं था, क्या माननीय कृषि आय-कर अधिकारी को अधिनियम की धारा 26 के अंतर्गत अपने ही आदेश को संशोधित करने का अधिकार-क्षेत्र है; और"

(2) क्या यदि उसके पास अधिकार-क्षेत्र था संशोधित करने का अपना ही आदेश, अधिनियम की धारा 26 के अंतर्गत, तो निर्धारणाधीन की *जरपेशगी* पट्टा से आय अधिनियम के अंतर्गत करयोग्य थी।"

वाद के तथ्य बहुत ही संकीर्ण सीमा के भीतर आते हैं। निर्धारण वर्ष 1944-45 के लिए, जो लेखा वर्ष 1351 फसली के अनुरूप था, निर्धारणाधीन ने अपनी कृषि आय रु. 37,43,520 दर्शाई। उसने रु. 9,42,137-3-10 की कटौती का दावा किया भूमि राजस्व, किराया आदि के आधार पर, जिसमें रु. 2,82,192 की एक राशि भी सम्मिलित थी जो टेकरी राज को भुगतान की गई दिखाई गई थी, जिससे दो पट्टा-धारित संपत्तियाँ *जरपेशगी* पट्टा

पर ली गई थीं दिनांक अगस्त 15, 1931 और जनवरी 31, 1936 के अभिलेखों द्वारा क्रमशः। इस राशि को पूंजी प्राप्ति के रूप में कटौती करने का प्रयास किया गया था।

दरभंगा के कृषि आय-कर अधिकारी ने अपने आदेश दिनांक दिसंबर 28, 1945 द्वारा इस तर्क को स्वीकार किया और उस राशि को कृषि आय-कर के भुगतान से मुक्त कर दिया। उसने उल्लेख किया:

"रु. 9,42,137-3-10 की राशि में से जो भूमि राजस्व और किराया के आधार पर दावा की गई थी, रु. 2,82,192 को टेकरी राज को भुगतान के रूप में दिखाया गया है और फिर स्वयं के लिए जरपेशगी ऋण की वसूली की ओर लिया गया है। मैंने गया जरपेशगी पट्टा के बंधपत्र का अवलोकन किया है। यह भुगतान निर्धारणाधीन को अनुमति दिया जाता है, क्योंकि यह बंधपत्र की शर्तों के अनुसार पूंजी आय है। साथ ही, मेरा विचार है कि रु. 2,82,192 की यह राशि टेकरी राज की आय के रूप में मानी जानी चाहिए और गया परिपत्र में टेकरी राज की अन्य आय के साथ निर्धारण की जानी चाहिए, क्योंकि इसे निर्धारणाधीन द्वारा उस राज के नाम जमा किया गया है और फिर टेकरी राज को दिए गए जरपेशगी ऋण के विरुद्ध समायोजित किया गया है।"

निर्धारण को 4 जनवरी, 1946 को सहायक कृषि आय-कर आयुक्त द्वारा अनुमोदित किया गया, और अगले ही दिन आय-कर अधिकारी ने अपना औपचारिक आदेश पारित किया तथा एक मांग सूचना जारी की।

निर्धारणाधीन ने तीन में से दो किस्तों का भुगतान किया, जब 22 मार्च, 1946 को कृषि आय-कर अधिकारी ने निम्नलिखित आदेश अभिलिखित किया :–

> "ऐसा प्रतीत होता है कि गया जरपेशगी पट्टा से कुछ कृषि आय, जिस पर वर्ष 1944-45 (1351 फसली) के लिए कर लगाया जाना चाहिए था, निर्धारण से छूट गई है। धारा 26 के अंतर्गत 20 मई 1947 की तिथि निर्धारित करते हुए सूचना जारी की जाए।"

निर्धारणाधीन के उपस्थित होने के पश्चात, एक पूरक निर्धारण आदेश पारित किया गया और रु. 39,512-6-0 को रु. 2,52,879 पर कर के रूप में निर्धारित किया गया।

वाद का निर्णय करते हुए, कृषि आय-कर अधिकारी ने निम्नलिखित कारण प्रस्तुत किए:

> "पट्टा की शर्तों के अनुसार निर्धारणाधीन को पट्टे पर दी गई भूमि पर कब्जा बनाए रखना है और उसका उपभोग-फल भोगना है एक निश्चित वर्षों की अवधि तक, पट्टादाता को रु. 1,000 का वार्षिक ठीका किराया देकर, और इस प्रकार वह विवादित जरपेशगी पट्टा की संपूर्ण प्रतिफल राशि की पूर्ति करता है। वास्तव में, इस जरपेशगी पट्टा द्वारा निर्धारणाधीन को एक निश्चित अवधि के लिए एक निश्चित किराए पर भूमि का अनुदान दिया गया है। इस पट्टा की अवधि के दौरान इन भूमियों से जो भी आय प्राप्त होती है, वह निर्धारणाधीन की आय है और इसलिए उस पर कर निर्धारणाधीन के हाथों में लगाया जाना चाहिए, न कि पट्टादाता के हाथों में।"

कृषि आय-कर अधिकारी ने बिहार कृषि आय-कर अधिनियम, 1938 की धारा 26 के अंतर्गत कार्य करने का दावा किया (इसके बाद अधिनियम के रूप में संदर्भित)।

निर्धारणाधीन ने अपील की। कृषि आय-कर आयुक्त ने निर्णय को पलट दिया। उसने इंगित किया कि टेकरी राज की संपत्ति से कृषि आय निर्धारणाधीन द्वारा विवरणी में दिखाई गई थी, परंतु उसे मुक्त माना गया था और इस प्रकार यह नहीं कहा जा सकता था कि वह निर्धारण से छूट गई थी जिससे मामला अधिनियम की धारा 26 के अंतर्गत आ सके। बिहार प्रांत (जैसा कि उस समय कहा जाता था) ने बिहार के राजस्व बोर्ड के समक्ष आवेदन किया, जिसने 7 फरवरी, 1948 के दिनांक के प्रस्ताव द्वारा दोनों प्रश्नों को पटना उच्च न्यायालय को संदर्भित किया। बोर्ड ने उन दोनों प्रश्नों पर कोई मत व्यक्त नहीं किया। उच्च न्यायालय में, दोनों प्रश्नों का उत्तर बिहार राज्य के पक्ष में दिया गया। उच्च न्यायालय द्वारा अनुमति अस्वीकार किए जाने पर, निर्धारणाधीन ने इस न्यायालय में आवेदन किया और विशेष

अनुमति प्राप्त की।

अधिनियम की धारा 26, जिसके अंतर्गत कृषि आय-कर अधिकारी ने कार्य करने का दावा किया, संशोधन से पूर्व भारतीय आय-कर अधिनियम की धारा 34 के समान रूप से है। अतः, आवश्यक रूप से, उस बाद वाली धारा की व्याख्या पर निर्णयों का स्वतंत्र रूप से उल्लेख किया गया विवाद करने वाले पक्षों द्वारा। अधिनियम की धारा 26 इस प्रकार है :

> "यदि किसी कारण से कोई कृषि आय, जो कृषि आय-कर के अधीन है, किसी वित्तीय वर्ष के लिए निर्धारण से छूट गई है, या बहुत कम दर पर निर्धारित की गई है, तो कृषि आय-कर अधिकारी उस वित्तीय वर्ष की समाप्ति से एक वर्ष के भीतर किसी भी समय, उस व्यक्ति पर जो ऐसी कृषि आय पर कृषि आय-कर देने के लिए उत्तरदायी है या, किसी कंपनी के वाद में, उसके प्रधान अधिकारी पर, एक सूचना जारी कर सकता है जिसमें वे सभी या कोई भी अपेक्षाएँ सम्मिलित हों जो धारा 17 की उपधारा (2) के अंतर्गत दी जाने वाली सूचना में सम्मिलित की जा सकती हैं, और वह ऐसी आय का निर्धारण या पुनः निर्धारण कर सकता है, और इस अधिनियम के प्रावधान, जहाँ तक संभव हो, उसी प्रकार लागू होंगे मानो वह सूचना उसी उपधारा के अंतर्गत जारी की गई सूचना हो:
>
> बशर्ते कर उसी दर पर लगाया जाएगा जिस दर पर वह लगाया जाता यदि ऐसी आय निर्धारण से न छूटी होती या उसका पूर्ण निर्धारण हुआ होता, जैसा भी मामला हो।"

संदर्भ की सुविधा के लिए, भारतीय आय-कर अधिनियम की 1948 में संशोधन से पूर्व की पूर्व धारा 34 को भी यहाँ इसी प्रकार उद्धृत किया जा सकता है। यह इस प्रकार थी :

> "यदि उसके अधिकार में आई निश्चित जानकारी के परिणामस्वरूप आय-कर अधिकारी यह पाता है कि किसी वर्ष में आय, लाभ या प्राप्तियाँ, जो आय-कर के अधीन हैं, निर्धारण से छूट गई हैं, या कम निर्धारित की गई हैं, या बहुत कम दर पर निर्धारित की गई हैं, या इस अधिनियम के अंतर्गत अत्यधिक राहत का विषय बनी हैं, तो आय-कर अधिकारी, किसी ऐसे

वाद में जिसमें उसे विश्वास करने का कारण है कि निर्धारणाधीन ने अपनी आय के विवरण छिपाए हैं या जानबूझकर उसके गलत विवरण प्रस्तुत किए हैं, उस वर्ष के अंत से आठ वर्ष के भीतर किसी भी समय, और किसी अन्य वाद में उस वर्ष के अंत से चार वर्ष के भीतर किसी भी समय, उस व्यक्ति पर जो ऐसी आय, लाभ या प्राप्तियों पर कर देने के लिए उत्तरदायी है, या किसी कंपनी के वाद में उसके प्रधान अधिकारी पर, एक सूचना जारी कर सकता है जिसमें वे सभी या कोई भी अपेक्षाएँ सम्मिलित हों जो धारा 22 की उपधारा (2) के अंतर्गत दी जाने वाली सूचना में सम्मिलित की जा सकती हैं, और वह ऐसी आय, लाभ या प्राप्तियों का निर्धारण या पुनः निर्धारण कर सकता है, और इस अधिनियम के प्रावधान, जहाँ तक संभव हो, उसी प्रकार लागू होंगे मानो वह सूचना उसी उपधारा के अंतर्गत जारी की गई सूचना हो:"

बशर्ते कि कर उसी दर पर लगाया जाएगा जिस दर पर लगाया जाता यदि आय, लाभ या प्राप्तियाँ निर्धारण से न छूटी होतीं या उनका पूर्ण निर्धारण हुआ होता, जैसा भी मामला हो: ....."

संक्षिप्त प्रश्न यह है कि क्या वह आय, जो विवरणी में दर्शाई गई थी परंतु कर से मुक्त मानी गई थी, यह कहा जा सकता है कि वह "निर्धारण से छूट गई" ताकि कृषि आय-कर अधिकारी अधिनियम की धारा 26 के अंतर्गत अपनी शक्तियों का प्रयोग करके उस पर कर लगा सके। यह प्रश्न, जो भारतीय आय-कर अधिनियम की धारा 34 के अंतर्गत उत्पन्न हुआ, उच्च न्यायालयों द्वारा तथा प्रिवी परिषद और इस न्यायालय द्वारा अनेक अवसरों पर विचार किया जा चुका है। पटना उच्च न्यायालय ने सही रूप से इंगित किया है कि मतों का बहुमत इस पक्ष में है कि ऐसी आय को निर्धारण से छूटी हुई माना जा सकता है।

उच्च न्यायालय ने यह निर्णय करते हुए कि कृषि आय-कर अधिकारी को अपने पूर्व निर्धारण को संशोधित करने का अधिकार-क्षेत्र था, धारा 26 के प्रारम्भिक शब्दों का उल्लेख किया, अर्थात "किसी कारण से", और यह कहा कि "छूट गई" शब्द को सीमित अर्थ देना

आवश्यक नहीं है, और यदि आय की कोई मद कर प्राधिकरणों की ओर से किसी भूल या चूक के कारण कर के अधीन नहीं लाई गई थी, तो वह मद "छूट गई" शब्द के अंतर्गत आ सकती है। उच्च न्यायालय के अनुसार, "निर्धारण से छूट गई" वाक्यांश केवल उन मामलों तक सीमित नहीं था जहाँ अनजाने में कोई चूक हुई हो, बल्कि धारा के बाद के भाग "जहाँ आय ... बहुत कम दर पर निर्धारित की गई है" को देखते हुए, उसमें वह स्थिति भी सम्मिलित है जहाँ जानबूझकर किया गया कार्य हो।

निर्धारणाधीन के विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि "किसी कारण" शब्दों[1] की व्यापकता का "निर्धारण से छूट गई" शब्दों की व्याख्या पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, कि "निर्धारण" शब्द केवल आय पर कर लगाने के अंतिम निर्णय को नहीं दर्शाता बल्कि उस संपूर्ण प्रक्रिया को दर्शाता है जिसके द्वारा परिणाम प्राप्त होता है, और चूँकि आय वास्तव में विवरणी में दर्शाई गई थी और उसे कर से मुक्त माना गया था, इसलिए "निर्धारण से छूट गई" का कोई प्रश्न नहीं उठता क्योंकि वह आय निर्धारण की प्रक्रिया से होकर गुजर चुकी थी। उसने यह भी तर्क किया कि धारा का बाद का भाग, जो बहुत कम दर पर निर्धारण से संबंधित है, यह निर्धारित करने के लिए सहायक नहीं हो सकता कि कब आय को निर्धारण से छूटी हुई कहा जा सकता है। उसका यह भी कहना है कि यह धारा उन मामलों पर लागू नहीं होती जहाँ आय विवरणी में दर्शाई गई हो परंतु उसे कर के लिए उत्तरदायी न माना गया हो, और उसने निम्नलिखित मामलों पर अवलंबित किया; *महाराजा बिक्रम किशोर बनाम असम प्रांत, आय-कर आयुक्त बनाम डे ब्रदर्स, मदन मोहन लाल बनाम आय-कर आयुक्त (दलीप सिंह, न्यायमूर्ति द्वारा)* तथा *चिमनराम मोतीलाल (सोना और चाँदी), बॉम्बे बनाम*

---

1 [1949] 17 आई.टी.आर. 220। (4) (1942) आई.एल.आर. 1943 बंबई 206।

(2) [1936] 4 आई.टी.आर. 209। (5) [1933] 1 आई.टी.आर. 129।

(3) [1935] 3 आई.टी.आर. 438 (6) [1940] 8 आई.टी.आर. 236।

आय-कर आयुक्त (केंद्रीय), बॉम्बे (कानिया, न्यायमूर्ति, जैसा कि उस समय थे, द्वारा)।

विद्वान महान्यायवादी ने न्यायालय का ध्यान अन्य मामलों की ओर आकर्षित किया जिनमें यह मत अपनाया गया है कि यदि आय विवरणी में दर्शाई गई हो और जानबूझकर उस पर कर न लगाया गया हो, तब भी धारा के अनुप्रयोग के लिए आवश्यक शर्त पूरी हो जाती है। उन्होंने अपने तर्क के समर्थन में निम्नलिखित मामलों का उल्लेख किया; एंग्लो-*पर्शियन ऑयल कंपनी (इंडिया) लिमिटेड बनाम आय-कर आयुक्त, पी. सी. मुल्लिक और डी. सी. ऐच, सदंर्भ,* आय-कर आयुक्त बनाम *पार्लाकिमेड़ी के राजा, चिमनराम मोतीलाल (सोना और चाँदी), बॉम्बे बनाम आय-कर आयुक्त (केंद्रीय), बॉम्बे तथा मदन मोहन लाल बनाम आय-कर आयुक्त।* विद्वान महान्यायवादी ने इस न्यायालय के एक हाल के निर्णय कमल सिंह बनाम आय-कर आयुक्त, बिहार और उड़ीसा पर भी विशेष रूप से भरोसा किया, जहाँ न्यायमूर्ति गजेंद्रगडकर ने सभी प्राधिकारों की समीक्षा के पश्चात यह निर्णय दिया कि भारतीय आय-कर अधिनियम की धारा 34 उस वाद पर लागू होती है जहाँ आय की कोई मद विवरणी में दर्शाई गई हो परंतु विचार करने के पश्चात जानबूझकर उसे कर के लिए उत्तरदायी नहीं माना गया हो। निर्धारणाधीन के अधिवक्ता का तर्क है कि उस वाद में यह बिंदु खुला छोड़ दिया गया था, और वह *मेसर्स चट्टूराम होरिलराम लिमिटेड बनाम आय-कर आयुक्त, बिहार और उड़ीसा* के वाद का उल्लेख करते हैं, जिसमें इसके विपरीत मत रखा गया था।[2]

उच्च न्यायालयों के अन्य निर्णयों का उल्लेख करने से पहले, यह देखना उचित होगा कि सर्वोच्च न्यायालय के ये दोनों वाद इस विषय से संबंधित हैं या नहीं, और यदि हैं, तो उनमें से कौन-सा। *कमल सिंह के वाद* में, यह प्रश्न निम्नलिखित परिस्थितियों में उत्पन्न हुआ। उस वाद में अपीलकर्ता के पिता का आय-कर के लिए वर्ष 1945-46 हेतु निर्धारण

---

2 (1) (1926) आई.एल.आर. 49 मद्रास 22
(2) (1942) आई.एल.आर. 1943 बंबई 206
(3) [1935] 3 आई.टी.आर. 438
(4) ए.आई.आर. 1959 एस.सी. 257।
(5) [1955] 2 एस.सी.आर. 290
(6) [1946] 14 आई.टी.आर. 671

किया गया था। आय-कर के लिए निर्धारित कुल आय रु. 1,00,000 थी, जिसमें रु. 93,604 की राशि सम्मिलित थी, जो उसे बकाया किराये पर ब्याज के रूप में प्राप्त हुई थी, वसूली व्ययों की कटौती के बाद। आय-कर अधिकारी के समक्ष यह तर्क किया गया कि यह ब्याज आय-कर के अधीन नहीं है क्योंकि यह कृषि आय है, पटना उच्च न्यायालय के निर्णय *कमाक्ष्य नारायण सिंह बनाम आय-कर आयुक्त* के अनुसार। आय-कर अधिकारी ने इस तर्क को इस आधार पर स्वीकार नहीं किया कि पटना उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध प्रिवी परिषद के समक्ष अपील लंबित थी। अपील में, अपीलीय सहायक आयुक्त ने यह माना कि आय-कर अधिकारी उच्च न्यायालय के निर्णय का पालन करने के लिए बाध्य था, और उसने आदेश को निरस्त कर दिया तथा आय-कर अधिकारी को नया निर्धारण करने का निर्देश दिया। इसके बाद आय-कर अधिकारी ने उक्त राशि को घटा दिया और शेष आय (कुछ छोटे समायोजनों के बाद) पर ही कर लगाया। उसका आदेश 20 अगस्त, 1946 को पारित किया गया। वर्ष 1948 में, प्रिवी परिषद ने पटना उच्च न्यायालय के निर्णय को पलट दिया। प्रिवी परिषद का निर्णय *आय-कर आयुक्त बनाम कमाक्ष्य नारायण सिंह* में सूचित है। इसके बाद आय-कर अधिकारी ने भारतीय आय-कर अधिनियम की धारा 34 के अंतर्गत एक सूचना जारी की और पक्षकार को सुनने के पश्चात रु. 93,604 की राशि का निर्धारण किया।
विभिन्न प्रक्रिया के बाद जो आवश्यक नहीं है।[3]

विभिन्न प्रक्रियाओं के पश्चात, जिनका विस्तार से वर्णन करना आवश्यक नहीं है, मामला इस न्यायालय के समक्ष पहुँचा, और जो प्रश्न इसके समक्ष था वह था "क्या वाद की परिस्थितियों में, बकाया किराये पर ब्याज के संबंध में अधिनियम की धारा 34 के अंतर्गत किया गया निर्धारण आदेश विधिसम्मत है।"

दो प्रश्न इसमें सम्मिलित थे। पहला यह था कि "सूचना" शब्द क्या इतना व्यापक है कि उसमें विधि की स्थिति के बारे में ज्ञान या किसी विधि संबंधी प्रश्न पर निर्णय के बारे में

---

3 [1948] 16 आई.टी.आर. 325

ज्ञान भी शामिल हो सके। इस बिंदु से इस वाद में हमारा कोई संबंध नहीं है। दूसरा यह था कि कब यह कहा जा सकता है कि आय निर्धारण से छूट गई है। तर्कों में "निर्धारण" शब्द पर जोर दिया गया और यह कहा गया कि इसका अर्थ केवल निर्धारण का आदेश नहीं है, बल्कि इसमें "कर लगाने के उद्देश्य से उठाए गए सभी कदम तथा कराधान की प्रक्रिया के दौरान की गई सभी कार्यवाहियाँ" सम्मिलित हैं। यह भी कहा गया कि "छूट गई" का अर्थ यह है कि आय निरीक्षण, खोज आदि से बच गई हो, या दूसरे शब्दों में, आय-कर अधिकारी की दृष्टि से बच गई हो। परंतु न्यायमूर्ति गजेन्द्रगडकर ने इस वाक्यांश को इतने संकीर्ण अर्थ तक सीमित नहीं किया। उन्होंने कहा;

> "यहाँ तक कि यदि निर्धारणाधीन ने अपनी आय की विवरणी प्रस्तुत की हो, तब भी ऐसे वाद हो सकते हैं जहाँ संपूर्ण आय का निर्धारण नहीं किया गया हो और आय का वह भाग जिसका निर्धारण नहीं हुआ है, उसे यह माना जा सकता है कि वह निर्धारण से छूट गया है। वर्तमान वाद में, निर्धारणाधीन द्वारा अपनी कृषि भूमि से प्राप्त किराये आय-कर अधिकारी के संज्ञान में लाए गए थे; यह प्रश्न कि क्या उक्त राशि विधि के अनुसार निर्धारित की जा सकती है, विचार किया गया और अंततः यह माना गया कि पटना उच्च न्यायालय का प्रासंगिक निर्णय, जो विभाग पर बाध्यकारी था, निर्धारणाधीन के इस दावे को उचित ठहराता है कि उक्त आय कर के लिए उत्तरदायी नहीं थी। इसमें कोई संदेह नहीं है कि निर्धारणाधीन की आय का एक भाग निर्धारित नहीं किया गया था और इस अर्थ में वह स्पष्ट रूप से निर्धारण से छूट गया है। क्या यह कहा जा सकता है कि क्योंकि इस विषय पर विचार किया गया और पटना उच्च न्यायालय के निर्णय के बाध्यकारी अधिकार के प्रकाश में गुण-दोष के आधार पर निर्णय लिया गया, इसलिए कोई आय निर्धारण से नहीं छूटी जब उक्त पटना उच्च न्यायालय का निर्णय बाद में प्रिवी परिषद द्वारा पलट दिया गया? हम यह मानने का कोई औचित्य नहीं देखते कि आय के निर्धारण से छूट जाने के वाद

हमेशा ऐसे ही होने चाहिए जहाँ आय का निर्धारण असावधानी या चूक के कारण या इस कारण नहीं हुआ हो कि कोई विवरणी प्रस्तुत नहीं की गई। हमारे मत में, यहाँ तक कि उस वाद में भी जहाँ विवरणी प्रस्तुत की गई हो, यदि आय-कर अधिकारी किसी त्रुटि के कारण निर्धारण योग्य आय के किसी भाग पर कर लगाने में असफल रहता है, तो यह वह स्थिति है जहाँ उक्त आय का वह भाग निर्धारण से छूट गया है। अपीलकर्ता का यह प्रयास कि धारा 34(1)(ख) में 'छूटना' शब्द के अर्थ पर अत्यंत संकीर्ण और कृत्रिम सीमा लगाई जाए, इसलिए सफल नहीं हो सकता।"

निर्धारणाधीन इस वाद को इस आधार पर भिन्न बताने का प्रयास करता है कि उस वाद में इस न्यायालय ने विशेष परिस्थितियों में विधि का प्रतिपादन किया था जहाँ विधि की नई व्याख्या की गई थी, और वह ऐसा मामला नहीं था जहाँ आय-कर अधिकारी ने केवल अपना मत बदल लिया हो। उसका तर्क है कि कम से कम कुछ ऐसी सूचना थी जो आय-कर अधिकारी के संज्ञान में आई थी, जिस पर उसकी बाद की कार्रवाई आधारित हो सकती थी। विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि न्यायमूर्ति गजेन्द्रगडकर ने उस स्थिति के प्रश्न को स्पष्ट रूप से खुला छोड़ा था, जहाँ कोई सूचना न हो और आय-कर अधिकारी केवल बिना किसी बाहरी स्रोत से सूचना प्राप्त किए अपना मत बदल ले। इस संदर्भ में निर्णय में निम्नलिखित टिप्पणियों का उल्लेख किया गया है:

"ऐसा प्रतीत होता है कि धारा 34 के प्रावधानों के क्षेत्र और प्रभाव की व्याख्या करते समय, उच्च न्यायालयों को यह निर्णय करना पड़ा है कि क्या आय-कर अधिकारी के लिए यह संभव होगा कि वह धारा 34 के अंतर्गत इस आधार पर कार्यवाही करे कि उसे लगता है कि निर्धारण आदेश करते समय उसका मूल निर्णय गलत था, बिना किसी बाहरी स्रोत से नई सूचना के, या क्या आय-कर अधिकारी का उत्तराधिकारी धारा 34 के अंतर्गत इस आधार पर कार्य कर सकता है कि उसके पूर्वाधिकारी द्वारा पारित निर्धारण आदेश त्रुटिपूर्ण था, और इस बिंदु पर भिन्न-भिन्न

मत व्यक्त किए गए हैं। श्री राजगोपाल शास्त्री, उत्तरदाता की ओर से, ने यह सुझाव दिया कि 1948 में संशोधित धारा 34 के प्रावधानों के अंतर्गत, आय-कर अधिकारी के लिए यह संभव होगा कि वह उक्त धारा के अंतर्गत कार्य करे, भले ही वह बिना किसी बाहरी स्रोत से सूचना के केवल अपना मत बदल ले और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि किसी विशेष वाद में उसने त्रुटिवश निर्धारणाधीन की आय को निर्धारण से छूट जाने दिया था। हम इस अपील में इस बिंदु पर कोई मत व्यक्त करने का प्रस्ताव नहीं करते।"

हम तत्काल कह सकते हैं कि अधिनियम की धारा 26 के शब्दों में किसी नई सूचना के अधिकार में होने या उसके प्राप्त होने की कोई आवश्यकता नहीं है। धारा इस प्रकार कहती है:

"यदि किसी कारण से कोई कृषि आय, जो कृषि आय-कर के अधीन है, किसी वित्तीय वर्ष के लिए निर्धारण से छूट गई है ..... तो कृषि आय-कर अधिकारी ..... ऐसी आय का निर्धारण करने के लिए आगे बढ़ सकता है ....."

"किसी कारण" शब्दों का प्रयोग, जो व्यापक अर्थ वाले हैं, उन शर्तों को समाप्त कर देता है जिनसे भारतीय आय-कर अधिनियम की धारा 34 सीमित होती है। अतः वह प्रश्न जिसे न्यायमूर्ति गजेन्द्रगडकर द्वारा खुला छोड़ा गया था, उस अधिनियम के संदर्भ में उत्पन्न नहीं हो सकता जिससे हम संबंधित हैं।

इस स्पष्ट मत को देखते हुए, हमारे लिए उन मामलों पर पुनः विचार करना शायद ही आवश्यक है जो इस न्यायालय के निर्णय से पहले के हैं। उनमें से सबसे महत्वपूर्ण मामलों पर न्यायमूर्ति गजेन्द्रगडकर के निर्णय में विचार किया गया है। अधिकांश मामलों पर हरीज़, मुख्य न्यायाधीश, और मुखर्जी, न्यायमूर्ति (जैसा कि उस समय थे) द्वारा *महाराजा बिक्रम किशोर बनाम असम प्रांत* के निर्णय में भी विचार किया गया है। उन सभी मामलों में जहाँ विपरीत मत लिया गया था, प्रिवी परिषद के निर्णय *राजेन्द्रनाथ मुखर्जी बनाम आय-कर*

आयुक्त पर अवलंबित किया गया था, विशेष रूप से उस अंश पर जहाँ यह कहा गया था:

"यह तथ्य कि धारा 34 के अंतर्गत ऐसी आय के लिए विवरणी प्रस्तुत करने हेतु सूचना देना आवश्यक है जो निर्धारण से छूट गई है, यह दृढ़ संकेत करता है कि वह आय जो पहले ही विधिवत् निर्धारण के लिए प्रस्तुत की जा चुकी है, उसे वैधानिक अर्थ में 'निर्धारण से छूटी हुई' नहीं कहा जा सकता।"[4]

वाद के तथ्य पूर्णतः भिन्न थे। आय विवरणी में प्रस्तुत की गई थी, और अभी उसका निर्धारण नहीं हुआ था जब धारा 34 के अंतर्गत सूचना जारी की गई। इस वाद की कुंजी उनके लॉर्डशिप्स द्वारा रैंकिन, मुख्य न्यायाधीश के अवलोकनों की स्वीकृति से प्राप्त होती है, *सदंर्भः लच्छीराम बसनलाल में*, कि:

> "आय निर्धारण से नहीं छूटी है यदि उस समय निर्धारणाधीन की आय के निर्धारण के लिए कार्यवाही लंबित हो, जो अभी तक उसके अंतिम निर्धारण में समाप्त नहीं हुई हो।"

उनके लॉर्डशिप्स ने यह कहा कि "निर्धारण से छूट गई" अभिव्यक्ति को "निर्धारित नहीं की गई" के समान नहीं समझा जाना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से "निर्धारण" शब्द को अत्यधिक संकीर्ण अर्थ और "छूट गई" शब्द को अत्यधिक व्यापक अर्थ मिल जाता है।"

यह कि वे टिप्पणियाँ उस समय उनके लॉर्डशिप्स के समक्ष उपस्थित तथ्यों से संबंधित थीं, निम्नलिखित अंश से स्पष्ट है:

> "यह कहना कि बर्न एंड कंपनी की आय, जो जनवरी 1928 में निर्धारण के लिए प्रस्तुत की गई थी और जिसे सही रूप से प्रस्तुत माना गया था, यद्यपि उसे ब्रुटिवश मार्टिन एंड कंपनी के निर्धारण में सम्मिलित कर लिया गया था, 1927-28 में 'निर्धारण से छूट गई' है, उनके लॉर्डशिप्स को एक अस्वीकार्य व्याख्या प्रतीत होती है....."

---

4 (1) [1949] 17 आई.टी.आर. 220।

(2) (1933) एल.आर. 61 आई.ए. 10, 16

उनके लॉर्डशिप्स ने अपील के निपटान के लिए यह पर्याप्त माना कि वे यह निर्णय दें कि बर्न एंड कंपनी की आय वर्ष 1927-28 में धारा 34 के अर्थ में "निर्धारण से छूटी नहीं थी"।[5]

यह टिप्पणियाँ निर्धारण कार्यवाहियों के लंबित रहने के संदर्भ में की गई थीं, और निम्नलिखित अंश द्वारा इस विषय में किसी भी संदेह का निश्चयात्मक रूप से निवारण हो जाता है :

"यह संभव हो सकता है कि यदि कर वर्ष के भीतर धारा 22 के अंतर्गत विवरणी प्रस्तुत करने के लिए कोई सूचना जारी नहीं की जाती है, तब धारा 34 ही उस त्रुटि के निवारण के लिए राज्य के लिए उपलब्ध एकमात्र साधन प्रदान करती है, परंतु यह एक भिन्न विषय है।"

हमारे मत में, निर्धारणाधीन द्वारा जिन मामलों पर अवलंबित कियागया है उनमें त्रुटि इस कारण उत्पन्न होती है कि उपर्युक्त वाद में कही गई टिप्पणियों को उनके संदर्भ से बाहर प्रयोग किया गया है और उन्हें ऐसे तथ्यों पर लागू किया गया है जहाँ वे लागू नहीं हो सकतीं। न्यायमूर्ति गजेन्द्रगडकर का निर्णय, यदि हम आदरपूर्वक कहें, इस विषय का अत्यंत पर्याप्त रूप से निपटान कर चुका है और हम उसी विषय को पुनः दोहराना आवश्यक नहीं समझते। उच्च न्यायालयों में मतों का बहुमत भी विपरीत दृष्टिकोण को स्वीकार करता है, और हमारा मत है कि यह सही है।

निर्धारणाधीन के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि इस न्यायालय का निर्णय *मेसर्स चट्टूराम होरिलराम लिमिटेड बनाम आय-कर आयुक्त, बिहार और उड़ीसा* एक भिन्न दृष्टिकोण प्रकट करता है, और हमें उसे न्यायमूर्ति गजेन्द्रगडकर के बाद के दृष्टिकोण की अपेक्षा अपनाना चाहिए। हम यह नहीं मानते कि उद्धृत अंतिम वाद में प्रश्न वही था। उसी वाद पर न्यायमूर्ति वेंकटराम अय्यर, न्यायमूर्ति गजेन्द्रगडकर और न्यायमूर्ति सरकार की पीठ के

---

5 (1) (1930) आई.एल.आर. 58 कलकत्ता 909, 912

समक्ष भी अवलंबित कियागया था, और न्यायमूर्ति गजेन्द्रगडकर ने उसे भिन्न ठहराया था। उन्होंने इस प्रकार कहा :

"श्री शास्त्री ने भी इस न्यायालय के निर्णय *मेसर्स चट्टूराम होरिलराम लिमिटेड बनाम आय-कर आयुक्त, बिहार और उड़ीसा* पर धारा 34 की अपनी व्याख्या के समर्थन में अवलंबित किया है। *चट्टूराम के वाद में* निर्धारणाधीन का आय-कर के लिए निर्धारण किया गया था, जिसे अपील में घटा दिया गया और आय-कर अपीलीय[6] अधिकरण द्वारा इस आधार पर निरस्त कर दिया गया कि 1939 का भारतीय वित्त अधिनियम छोटा नागपुर में निर्धारण वर्ष के दौरान लागू नहीं था। संदर्भ पर अधिकरण के निर्णय को उच्च न्यायालय ने बनाए रखा। इसके पश्चात बिहार के राज्यपाल ने 1942 का बिहार विनियमन 4 जारी किया और इसके द्वारा 1939 के भारतीय वित्त अधिनियम को छोटा नागपुर में 30 मार्च, 1939 से प्रभावी करते हुए लागू कर दिया। इस अध्यादेश को गवर्नर-जनरल की स्वीकृति प्राप्त हुई। 8 फरवरी, 1944 को आय-कर अधिकारी ने एक आदेश पारित किया जिसके अनुसार धारा 34 के प्रावधानों के अंतर्गत निर्धारणाधीन के विरुद्ध कार्यवाही की गई और उसका परिणाम यह हुआ कि निर्धारणाधीन पर आय-कर का निर्धारण किया गया। इस न्यायालय में अपनी अपील में निर्धारणाधीन ने यह तर्क उठाया कि उसके विरुद्ध धारा 34 के अंतर्गत जारी की गई सूचना अमान्य थी। इस न्यायालय ने यह माना कि जिस आय, लाभ या प्राप्तियों का निर्धारण किया जाना था वे आय-कर के अधीन थीं और यह ऐसा मामला था जिसमें कर योग्य आय धारा 34 के अर्थ में निर्धारण से छूट गई थी, न कि केवल आय-कर के अभाव में निर्धारण का मामला। जहाँ तक इस निर्णय का संबंध है, यह मूल रूप से श्री शास्त्री द्वारा प्रस्तुत तर्क के प्रतिकूल है। तथापि, वह न्यायमूर्ति जगन्नाधदास द्वारा की गई टिप्पणियों पर निर्भर करते हैं कि

---

6 (1) '[1955] 2 एस.सी.आर. 290

'अपीलकर्ता के अधिवक्ता का यह तर्क कि निर्धारण से छूट जाना केवल साधारणतः निर्धारण न होने के समान नहीं है, निराधार नहीं है' और वह इंगित करते हैं कि अंतिम निर्णय के समर्थन में न्यायमूर्ति द्वारा दिया गया कारण यह था कि यद्यपि पहले निर्धारण की कार्यवाही की गई थी, वे किसी ऐसी त्रुटि के कारण वैध निर्धारण में परिणत नहीं हो सकीं जो निर्धारण प्राधिकारियों के कारण नहीं थी, जबकि आय कर के अधीन थी। श्री शास्त्री का कहना है कि केवल उन्हीं मामलों में, जहाँ यह दिखाया जा सकता है कि आय किसी ऐसी त्रुटि के कारण निर्धारण से छूट गई जो निर्धारण प्राधिकारियों के कारण नहीं थी, धारा 34 लागू की जा सकती है। हम नहीं मानते कि निर्णय का उचित पाठ इस निष्कर्ष तक पहुँच सकता है। जिन टिप्पणियों पर श्री शास्त्री भरोसा करते हैं वे स्वाभाविक रूप से उन तथ्यों के संदर्भ में की गई थीं जिनसे न्यायालय उस समय संबंधित था और उन्हें स्पष्ट रूप से उन्हीं तथ्यों के संदर्भ में पढ़ा जाना चाहिए। यह कहना अनुचित होगा कि इन टिप्पणियों का उद्देश्य धारा 34 के प्रयोग को केवल उन मामलों तक सीमित करना था जहाँ आय ऐसे कारणों से निर्धारण से छूट गई हो जो निर्धारण प्राधिकारियों से संबंधित न हों। वास्तव में न्यायमूर्ति जगन्नाधदास ने यह सावधानी भी बरती कि यह निर्धारित करना आवश्यक नहीं है कि वास्तव में निर्धारण से छूट जाना क्या है और यह पर्याप्त होगा कि निर्णय को उस सीमित आधार पर रखा जाए जिसका अभी उल्लेख किया गया है। हम संतुष्ट हैं कि यह निर्णय अपीलकर्ता के वाद के लिए किसी प्रकार सहायक नहीं है।"

हमारे द्वारा दिए गए कारणों के आधार पर, हमारा मत है कि कृषि आय-कर अधिकारी अधिनियम की धारा 26 के अंतर्गत उस आय की मद का निर्धारण करने के लिए सक्षम था जिसे उसने पहले कर के अधीन नहीं किया था, यद्यपि वह आय विवरणी में शामिल थी और उस समय कृषि आय-कर अधिकारी ने यह माना था कि वह कर से मुक्त है। अतः उच्च न्यायालय द्वारा दिया गया उत्तर सही था।

यह हमें दूसरे प्रश्न तक ले आता है। आय पट्टा-धारित संपत्तियों से प्राप्त हुई थी और वह कृषि आय थी। निर्धारणाधीन का तर्क है कि वह टेकरी राज के हाथों में कृषि आय हो सकती है, परंतु उसके हाथों में वह पूंजी प्राप्ति थी और लगभग रु. 17,00,000 के ऋण की वापसी के रूप में थी जो रानी भुवनेश्वरी कुँवर को दिया गया था। बिहार राज्य, तथापि, इस बात से इनकार करता है कि कोई ऋण या बंधक था। यह कहा जाता है कि निर्धारणाधीन को कुछ वर्षों के लिए रु. 1,000 प्रति वर्ष के किराये पर कब्जा दिया गया था और जो राशि दी गई थी वह प्रीमियम थी, न कि ऋण।

विवादित दस्तावेज दो हैं। वे स्पष्ट रूप से रानी और निर्धारणाधीन के बीच पट्टा के अभिलेख हैं। इन दस्तावेजों से यह स्पष्ट है कि रु. 17,16,000 के भुगतान के प्रतिफल में पट्टाधारी को 28 वर्षों के लिए पट्टा-धारित संपत्ति का कब्जा दिया गया था। ऐसा कोई स्पष्ट प्रावधान नहीं है जो इस राशि को ऐसा ऋण बनाता हो जिसे या तो पुनर्भुगतान द्वारा या उपभोग-फल के उपभोग द्वारा लौटाया जाना हो। कोई ब्याज निर्धारित नहीं किया गया है और न ही मोचन का कोई अधिकार प्रदान किया गया है। 28 वर्षों की अवधि के अंत में यदि कोई राशि शेष रह जाए तो उसके लिए किसी व्यक्तिगत देयता का भी कोई प्रावधान नहीं है। ये वे कसौटियाँ हैं जिनके आधार पर यह निर्धारित किया जाता है कि यह लेन-देन *जरपेशगी* पट्टा का था या बंधक सहित पट्टा का। देखें मुल्ला का संपत्ति अंतरण अधिनियम, चतुर्थ संस्करण, पृष्ठ 352।

निर्धारणाधीन के विद्वान अधिवक्ता ने अपने सावधानीपूर्ण तर्क में हमें दोनों दस्तावेजों से अवगत कराया और यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि पक्षकारों के बीच देनदार और ऋणदाता का संबंध विद्यमान था। उन्होंने हमें धारा 4 की ओर इंगित किया, जिसमें एक प्रावधान निहित है जो पट्टाधारी को यह अधिकार देता है कि वह मक़र्ररीदारों द्वारा देय कुल सकल राशि का 12½ प्रतिशत वसूली के व्यय तथा इससे संबंधित अन्य प्रभारों के रूप में, पट्टादाता को आरक्षित किराया अदा करने के पश्चात, घटा ले और शेष राशि को अपने पास

रखे। उन्होंने यह प्रस्तुत किया कि पट्टादाता को किया गया भुगतान प्रीमियम नहीं था बल्कि एक ऋण था और अभिप्राय यह था कि इस प्रकार पट्टाधारी अथवा ऋणदाता को उसकी राशि वापस मिल जाएगी।

यह धारा अपने आप में विभिन्न प्रकार की व्याख्याओं को स्वीकार कर सकती है और संभव है कि उनमें से एक व्याख्या वही हो जो सुझाई गई है, परंतु शेष अभिलेख के संदर्भ में पढ़े जाने पर यह धारा का वास्तविक अभिप्राय नहीं है। इस धारा की व्याख्या करने के लिए अभिलेख को समग्र रूप से पढ़ना आवश्यक है, और जब इस प्रकार देखा जाता है, तो यह स्पष्ट होता है कि यह पट्टादाता को वसूली व्ययों की देयता से मुक्त करने का प्रावधान करता है। यह संदेह से परे कर देता है कि वसूली व्यय पट्टादाता के खाते में नहीं डाले जाने थे बल्कि उन्हें पट्टाधारी द्वारा वहन किया जाना था। यदि ऐसा प्रावधान अभिलेख में सम्मिलित न किया गया होता, तो यह विवाद का विषय बन सकता था कि इस व्यय के लिए कौन उत्तरदायी होगा।

निर्धारणाधीन के विद्वान अधिवक्ता ने इसके बाद हमारा ध्यान 31 जनवरी, 1936 के अभिलेख की अंतिम धारा की ओर आकर्षित किया। तथापि, वह एक विशेष अनुबंध था, और उसमें किया गया प्रावधान उन विषयों से संबंधित था जो अभिलेख में सम्मिलित नहीं थे।

कि इस पट्टा-धारित संपत्ति से, जो भूमि थी, प्राप्त आय "कृषि आय" की परिभाषा के अंतर्गत आएगी, इस पर हमारे समक्ष गंभीर रूप से विवाद नहीं किया गया। निर्धारणाधीन का मामला इस दावे पर आधारित है कि यह एक धन-उधार देने का लेन-देन था और प्राप्तियाँ पूंजी की वापसी का प्रतिनिधित्व करती थीं। यदि, तथापि, पट्टादाता को किया गया भुगतान प्रीमियम था और ऋण नहीं था, तो इन पट्टा-धारित संपत्तियों से प्राप्त आय, कृषि होने के कारण, अधिनियम के अंतर्गत करयोग्य थी। हमारा मत है कि ऐसा ही था, और कृषि आय-कर अधिकारी सही था जब उसने इस पर कृषि आय-कर लगाया। यह आय धन-उधार देने के व्यवसाय की आय नहीं थी, और यह प्राप्तकर्ता के स्वरूप पर निर्भर नहीं करता। ठीका लाभ

स्पष्ट रूप से कृषि आय थे क्योंकि वे वास्तव में भूमि से प्राप्त हुए थे। अतः इस प्रश्न पर उच्च न्यायालय द्वारा दिया गया उत्तर सही था।

परिणाम यह है कि अपील असफल होनी चाहिए, और तदनुसार इसे व्ययों सहित निरस्त किया जाता है।

याचिका खारिज कर दी गई।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।